बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 3, July-September, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971
(ONLINE)

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में कबीर की प्रासंगिकता

बेबी कुमारी
शोधार्थी
विश्वविद्यालय हिंदी- विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा

शोध सार:- हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में कबीरदास का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली और क्रांतिकारी रहा है। वे केवल एक संत कवि ही नहीं ब्लकि समाज सुधारक, चिंतक और मानवतावादी विचारक भी थे। कबीरदास का प्रार्दुभाव ऐसे समय में हुआ जब भारतीय समाज में धार्मिक आडंबर, जातिगत भेदभाव, पाखंड और सामाजिक विषमताएँ चरम सीमा पर व्याप्त थी। तब कबीर ने निर्भीकता से इन कुरीतियों का विरोध किया। उनकी रचनाओं में सत्य, प्रेम, समानता और मानवीय चेतना का अद्भुत समन्वय मिलता है। आज का समय भले ही विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में आगे बढ़ चुका है किंतु सामाजिक, धार्मिक और नैतिक समस्याएँ आज भी विद्यमान हैं। ऐसे समय में कबीर के विचार और उनकी रचनाओं में के माध्यम से जो हमें शिक्षा मिलती है वह आज भी प्रासंगिक प्रतीत होती है।

बीज शब्द - साम्प्रदायिकता, कल्याणकारी, मार्क्सवाद, विलासितापूर्ण, जातिवाद, रुढीवादिता, विवेकसम्मत, प्रतिहिंसा अंधविश्वास।

यदि किसी रचना की प्रासंगिकता को लेकर बात की जाए तो सबसे पहले प्रश्न यही उठता है कि आखिर क्यों? कोई रचना इतनी प्रासंगिक हो जाती है कि उसे युगों -युगों तक स्मरण किया जाता है। इसका सीधा-सा उत्तर है जो रचनाएं आज की समस्याओं से आज की चुनौतियों से टकराने की जज्बा रखती है वही प्रासंगिक है। जब प्रासंगिकता की बात की जाए तो निःसंदेह कबीर की रचनाएँ सबसे ऊँची चोटी पर खड़ी होगीं। कबीर इस अर्थ में ज्यादा प्रासंगिक है कि वे अपने समय में तो प्रासंगिक थे ही लेकिन आज 600 साल बाद भी उनकी प्रासंगिकता बरकरार है।

कबीर का पार्दुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। समाज में व्याप्त छुआछूत, अंधविश्वास, ढोंग, पाखंड, सामप्रदायिकता किसी विचारवान मनुष्य को उद्वेलित करता है। कबीरदास एक विचारवान मनुष्य थे। उनमें आत्मविश्वास कूट -कूट कर भरा हुआ था। तभी तो उन्होंने स्वयं के बारे में कहा है " हम न मरिहैं मरिहैं संसारा। "**1** विचारणीय है कि जो व्यक्ति स्वयं को अमर कह रहा उसके अथाह आत्मविश्वास की सीमा की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। कबीर को इस बात का एहसास था कि उसकी विचारधारा की कभी मृत्यु नहीं हो सकती हैं।

भारतीयों का जीवनादर्श रहा है 'संतोषम परम सुखम्। लेकिन आज संतोष से कहीं ज्यादा असंतोष का पलड़ा भारी है और असंतोष से उपजी मनोवृत्तियों स्वस्थ समाज के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकती। कबीर ने अपने समय में ही मनुष्य को चेता दिया था कि सभी पापों का मूल धन संचय ही है। ईर्ष्या, द्वेष, कुंठा, नरसंहार ये सभी पूँजी की लालसा की ही देन है। आज की सबसे आधुनिक विचारधारा मार्क्सवाद को ही देखें तो इसके अनुसार 'पूँजी जैसी निर्जीव वस्तु सजीवों खासकर मनुष्यों को संचालित करेगी तो उन्हें हृदयहीन बना देगी'। वैसे मार्क्स और कबीर के विचारों की तुलना नहीं की जा सकती लेकिन पूँजी के लिहाज से देखे तो दोनों ही इसके संचय का विरोध करते दिखाई पड़ते हैं। हालांकि कबीर ने सदैव ही धन संचय का विरोध किया है किन्तु अपव्यय की निंदा की है क्योंकि आवश्यकता से अधिक व्यय विलासितापूर्ण जीवन को जन्म देती है। इस विलासिता के मद में मनुष्य इतना अंधा हो जाता है कि उसे अच्छे बुरे की पहचान ही नहीं हो पाती है। कबीर एक संत ही नहीं महान विचारक भी थे। जो अपने समय से लेकर आज के समय तथा समस्याओं से टकराते हैं। आज के समय में जहाँ मानव की समस्त संवेदनाए खत्म होती जा रही है ऐसे में कबीर का आध्यात्मिक प्रेम पंथ हमें जीने की नई राह दिखाता है। कबीर के अनुसार मनुष्य अपने जीवन में धन संचय करने के पीछे पड़ा रहता है।जिसका कोई उद्येश्य नहीं है क्योंकि वह इस संसार की वास्तविकता से अनभिज्ञ रहता है। सभी पापों का मूल धन संचय ही है। घन धरती जोड़ना कबीर की संतोषीवृत्ती के विरूद्ध था। तभी तो उन्होंने स्वयं के बारे में कहा है-

" काहे कें भीत बनाउँ टाटी, का जाणें कहँ परिहै माटी।
काहे कूँ मंदिर महल चिनाउँ मूवाँ पीछे घडो एक रहन न पाउँ।।"**2**

कबीर एक ऐसे प्रणेता हैं जिनका पग-पग मानवीय करूणा, प्रेम, त्याग, दया संतोष से भरा पड़ा है। उन्होंने समाज में व्याप्त समस्त विसंगतियों मसलन धार्मिक-सामाजिक कर्मकांडों, मिथ्याचारों, साम्प्रदायिकता, रूढिवादिता आदि के विरूद्ध पूरे साहस के साथ प्रखरता से प्रहार किया है। यही सब बातें उन्हें निर्भय कांतिकारी व्यक्तित्व का दर्जा देती है।

आज की प्रगतिशील चेतना के तत्व कबीर की कविताओं में आसानी से ढूँढा जा सकता है। कबीर के विचारों में जहाँ एक ओर मानवता,

करूणा के बीज दिखाई देते हैं वहीं दूसरी ओर समान समाज-व्यवस्था का मार्ग भी। शास्त्रांक्त बातों की अपेक्षा वे भी अनुभवजन्य सत्य पर विश्वास करते है। पुस्तकीय ज्ञान को कबीर निरर्थक समझते हैं। शिक्षा का उद्येश्य समाज में व्याप्त जातिवाद, धार्मिकता, भेदभाव को चुनौती देना होना चाहिए। लेकिन विडम्बना ये है कि ये सारी समस्याएँ कबीर के समय मध्यकाल में तो उपस्थित थी ही आज उससे कहीं विकराल रूप में सिर उठाए खड़ी है। वर्तमान में शिक्षा का मुख्य उद्येश्य धनोपार्जन हो गया हैं। संस्कारगत आचार व्यवहार से उसका कोई संबंध नहीं रह गया हैं। इसलिए आज की शिक्षा डॉक्टर, इंजीनियर तो बना देती हैं लेकिन मानव नहीं बना पाती। इसलिए कबीर पुस्तकीय ज्ञान से ज्यादा अनुभव की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति की खरापन को महत्व देते हैं। उन्होंने मनुष्य को इस जगत की समस्याओं के संबंध में अधिक सोचने के लिए बाध्य किया। कबीर का चितंन समाजोन्मुखी था। वस्तुतः कबीर एक ऐसी व्यवस्था के पक्षधर थे जो किसी व्यक्ति की कुल जन्माधारित श्रेष्ठता या निम्नता घोषित न करके व्यक्ति की व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर मूल्यांकन कर सके। इसी विवेकसम्मत समाज व्यवस्था के लिए कबीर कहते हैं-

“जो तू बाँभन बँभनी जाया। तौ आन बाट हौ क्यों नहीं आया॥"**3**

कबीर का चिंतन आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कई विचारों, उत्तेजक बहसों का केन्द्र बिन्दु हैं। वे मानवाधिकार के लिए संघर्षरत थे। मनुष्य को मनुष्य की तरह जीने का अधिकार ही मानवाधिकार हैं। कबीर मानव-मानव के बीच कोई भेद स्वीकार नहीं करते। वर्तमान में भी कभी धर्म के नाम पर तो कभी जातिगत भेदभाव के कारण सांप्रदायिक दंगे उग्र रूप अख्तियार कर लेती हैं। कबीर की विचारधारा में इतनी ताकत है कि वह साम्प्रदायिकता को रोकने के लिए वर्ण-व्यवस्था को पालित -पोषित करने वाली सवर्णों से सीधे टकराने की क्षमता रखती है। उन्होंने विश्व-वंधुत्व की भावना को स्वीकारा इसलिए जाति-पाति के भेदभाव की आलोचना की। उन्होंने कहा है-

"हमारे कैसे लोहूं तुम्हारे कैसे दूध। तुम कैसे ब्राहमण पांडे हम कैसे सूद॥"**4**

वस्तुतः कबीर को ऐसा कोई भी मन स्वीकार नहीं जो मनुष्य -मनुष्य के बीच भेद पैदा करें तथा कोई भी अनुष्ठान या साधनापद्धति स्वीकार नहीं जो विवेकसम्मत न हो। प्रत्येक अविवेकी व्यवस्था को स्वीकार करने का साहस लेकर कबीर उत्पन्न हुए थे। कबीर जीव हिंसा के विरोधी थे। हाल ही में गाय पर लगातार राजनीति होते -होते अंततः सरकार द्वारा उसके वध पर रोक लगा दी गई। गो हत्या पर पाबंदी आज लगी है लेकिन यही बात कबीर अपने समय में कहकर चेताया था कि

" जाको दूध धाई करि पीजै। ता माता को वध क्यों कीजै॥"

कबीर का चिंतन एक ओर व्यक्तिवाद का समर्थन करता दिखाई देता है तो दूसरी ओर उनकी सामाजिक आलोचना उनके युगबोध का दर्पण है। कबीर के प्राणिमात्र पर दया, प्रेम, करूणा, सत्य पर आचरण के उपदेश आज अधिक सामायिक है क्योंकि विज्ञान के अत्याधुनिक अविष्कारों ने मनुष्य जाति के हाथ में केवल बन्दूकें थमा दी हैं, बल्कि उसके मनोमस्तिष्क में भी इतनी घृणा, प्रतिहिंसा और द्वेष भर दिया है कि वह किसी के प्राण लेने में भी क्षण भर नहीं हिचकता। अखवारों एवं टेलीविजन के माध्यम से हम ऐसी घटनाओं से रू-ब-रू होते ही रहते हैं। मध्यकाल में धर्म के नाम पर रीति-रिवाज, अंधविश्वास जो खोखले बाह्य-आडम्बर किए जा रहे थे वे आज कहीं ज्यादा प्रासंगिक हैं। भारत जैसे विकासशील एवं गरीब देश में जहाँ लाखों लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता हैं वहीं प्रतिवर्ष मूर्तियों को स्नान कराने में लाखों टन दूध नाला में बहा दिए जाता हैं। आज का कथित सभ्य समाज क्यों इतना संवेदनहीन हो गया है कि वे मंदिर में पत्थर की मूर्ति को स्वर्ण मंडित वस्त्र तो चढ़ाएगा, मुस्लिम मस्जिद में महँगी चादर तो चढ़ाएगा लेकिन किसी गरीब, दीन-हीन, लाचार, बेबस को देखते ही मूँह मोड़ लेगा। और तो और मंदिरों में प्रवेश के लिए भी धनाढ्य वर्ग के लिए विशेष व्यवस्था की जाती है तथा गरीबों को जता दिया जाता है कि आज ईश्वर भी उन्हीं की सुनते हैं जो आर्थिक रूप से सक्षम हैं जैसे-जैसे इन धर्म के ठेकेदारों की लोभवृत्ति बढ़ती जाएगी वैसे वैसे इन मंदिरों एवं मस्जिदों में धनाढ्य वर्ग के लिए द्वार खुलते जाएंगे। कबीर ने इन सब की कड़ी भर्त्सना की है। हिन्दू अपने धर्म को श्रेष्ठ समझता है तथा मुसलमान अपने धर्म को। इसलिए कबीर साफ -साफ शब्दों में कह उठते है -

"अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करें बराई, गागर छुवन न देई।
मुसलमान के पीर औलिया, मुर्गी मुर्गा खाई॥"**5**

कबीर लीक छोड़कर चलने वाले कवि थे इसलिए उन्हें जो ठीक लगा उसे कहने में कोई संकोच नहीं किया। कबीर ने समय के चैलेंज को बहादुरी और समझदारी से स्वीकारा। कबीर, सूर तुलसी से इस दृष्टि से महान है कि उन्होंने समय को पहचाना और तत्कालीन यथार्थ का बहुत बहादुरी से सामना किया। कबीर बाह्य संघर्ष की जगह आंतरिक संघर्ष की यथार्थता को समझा तथा साखी की माध्यम से समता, स्नेह, सद्भाव, त्याग आदि मूल्यों की स्थापना की। उन्होंने घृणा को प्रेम से, अविश्वास को विश्वास से, नास्तिकता को आस्तिकता से, स्व को पर से परिशुद्ध किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- “कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ। वह

उच्च कोटि के साधक, सत्य के उपासक, ज्ञान के अन्वेषक और जन्म से विद्रोही थे। उनके इसी व्यक्तित्व को देखकर उन्हें नृसिहं की प्रतिमूर्ति कहा गया है। उनका काव्य उनके व्यक्तित्व का दर्पण है।"**6** कबीर के विचारों को हम 21वीं सदी में अपना रहे हैं तथा जीवन में घटित घटनाओं के संदर्भ में उनके दोहे, साखियों का उदाहरण दे रहे हैं, उनकी प्रासंगिकता के लिए इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

निष्कर्ष : कबीर सदा ही ऊँच -नीच की संकल्पना को खारिज करते है तथा विवेकसम्मत समाज की स्थापना पर बल देते हैं। ऐसे अनेकों दृष्टिकोण मिल जाऐगें जिससे यह साबित होता है कि कबीर मध्यकाल में ही नहीं बल्कि आज के समय में भी समान रूप से प्रासंगिक है और प्रासांगिक रहेगें। इसलिए मुक्तिबोध अपने एक लेख ‘‘मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन: एक पहलू’’ में पूछते हैं –

‘‘कबीर और निर्गुण परम्परा के कवि तथा दक्षिण के कुछ महाराष्ट्रीय संत तुलसीदास की अपेक्षा अधिक आधुनिक क्यों लगते हैं।"**7**

कबीरदास की रचनाओं की प्रासंगिकता यदि कहीं एक जगह खंडित होती है तो वह है उसकी स्त्री संबंधी चिंतन। क्योंकि स्त्रियों के बारे में कबीर के विचार बहुत प्रगतिशील नहीं थे। कई पदों में उन्होंने स्त्री को हेय दृष्टि से देखा है। जैसे-

'नारी की झाई परत, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनको कौन गति जे नित नारी के संग ।। **8**
"नारी कुंड नरक का बिरला थंभै बाग।"**9**

वैसे कबीर स्त्री विरोधी नहीं थे लेकिन साधाना की प्राप्ति में वे स्त्री को बाधक मानते थे। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि स्त्री संबंधी कबीर के विचार आज की तारिख में तो प्रासंगिक नहीं है।

संदर्भ:-

1. कबीर ग्रंथावली, सं० डॉ० श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, नई दिल्ली, पृ० सं० 30
2. कबीर ग्रंथावली, सं० डॉ० श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, नई दिल्ली, पृ० सं० 36
3. कबीर ग्रंथावली, सं० डॉ० श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, नई दिल्ली, पृ० सं०- 36
4. कबीर ग्रंथावली सटीक, अशोक प्रकाशन दिल्ली, पृ० सं० 66
5. कबीर ग्रंथावली सटीक, अशोक प्रकाशन दिल्ली, पृ० सं०49
6. कबीर ग्रंथावली सटीक, अशोक प्रकाशन दिल्ली, पृ० सं० 31
7. मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन :एक पहलू, लेख -माधव मुक्तिबोध. www.detabaseonline.in
8. कबीर ग्रंथावली सटीक, अशोक प्रकाशन दिल्ली, पृ० सं० 66
9. कबीर ग्रंथावली सटीक, अशोक प्रकाशन दिल्ली, पृ० सं० 68.